IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 9, Issue 1, September 2019
Impact Factor: 4.819

उपनिवेशवाद से गणतंत्र तक: स्वाधीनता संग्राम (1857-1947) में जन-भागीदारी और सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक विमर्श

डॉ. रजत गंगवार
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बीसलपुर, पीलीभीत।
rajatgangwar4289@gmail.com

सारांश : भारत का स्वाधीनता संग्राम केवल राजनीतिक सत्ता के हस्तांतरण की कहानी नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी दीर्घकालिक सामाजिक, आर्थिक और वैचारिक प्रक्रिया है जिसने उपनिवेशवादी शोषण के विरुद्ध करोड़ों भारतीयों को एक साझा राष्ट्रीय चेतना के सूत्र में बांधा। सन् 1857 के महान विद्रोह से लेकर 1947 में स्वतंत्र गणराज्य की स्थापना तक की नब्बे वर्षों की यात्रा में जन-भागीदारी का स्वरूप निरंतर विस्तृत होता गया — यह संघर्ष प्रारंभ में सीमित वर्गों, विशेषकर सामंतों, सैनिकों और स्थानीय शासकों तक सीमित था, परंतु बीसवीं शताब्दी आते-आते यह किसानों, मजदूरों, महिलाओं, विद्यार्थियों और आदिवासी समुदायों तक फैलकर एक सच्चे जन-आंदोलन का रूप ले चुका था। प्रस्तुत शोध पत्र में इस संक्रमण की ऐतिहासिक पड़ताल करते हुए यह विश्लेषित किया गया है कि किस प्रकार सामाजिक-आर्थिक असमानताओं और राजनीतिक चेतना ने मिलकर एक संगठित राष्ट्रीय विमर्श को जन्म दिया? सारगर्भित ऐतिहासिक उदाहरणों — चंपारण सत्याग्रह, खेड़ा आंदोलन, असहयोग आंदोलन, नमक सत्याग्रह, भारत छोड़ो आंदोलन तथा आदिवासी व किसान विद्रोहों — के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि स्वाधीनता संग्राम बहुस्तरीय, बहुवर्गीय और बहुक्षेत्रीय आंदोलन था, जिसके परिणामस्वरूप भारत ने औपनिवेशिक दासता से मुक्त होकर एक लोकतांत्रिक गणराज्य का स्वरूप ग्रहण किया।

कुंजी शब्द- स्वाधीनता, उपनिवेशवादी शासन, राष्ट्रीय चेतना, जन भागीदारी, सत्याग्रह, औपनिवेशिक दासता, सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक शोषण, क्रांतिकारी आंदोलन, जन जागरूकता, स्वदेशी, जनभागीदारी, प्रशासनिक व्यवस्था, सामाजिक अन्याय, राजनीतिक दासता, श्रमिक वर्ग, राष्ट्रीय आंदोलन, अहिंसक प्रतिरोध, संगठित नेतृत्व, आर्थिक शोषण,धन निष्कासन, स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व, सामाजिक न्याय।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 9, Issue 1, September 2019
Impact Factor: 4.819

I. प्रस्तावना

1757 की प्लासी की लड़ाई से आरंभ हुआ ब्रिटिश उपनिवेशवाद धीरे-धीरे संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में फैल गया। प्रारंभिक दौर में प्रतिरोध बिखरा हुआ और स्थानीय था, परंतु समय के साथ यह एक संगठित, अखिल भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में परिवर्तित हो गया। इस परिवर्तन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह रही कि आंदोलन धीरे-धीरे कुलीन वर्ग से निकलकर आम जनमानस तक पहुंचा। 1857 का विद्रोह जहां मुख्यतः सैनिकों, तालुकदारों और स्थानीय शासकों तक सीमित था, वहीं 1920 के दशक तक यह आंदोलन किसानों, मजदूरों, महिलाओं और विद्यार्थियों को भी अपने साथ जोड़ चुका था। इस शोध पत्र का उद्देश्य स्वाधीनता संग्राम को केवल कालानुक्रमिक घटनाओं की श्रृंखला के रूप में नहीं, बल्कि जन-भागीदारी, सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक शोषण-विरोध के अंतर्संबंधों के रूप में समझना है।

II. 1857 का विद्रोह: प्रथम स्वाधीनता संग्राम

1857 का विद्रोह ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध पहला व्यापक सशस्त्र प्रतिरोध था, जिसकी जड़ें केवल सैनिक असंतोष में नहीं बल्कि गहरी सामाजिक-आर्थिक पीड़ा में निहित थीं। डलहौजी की व्यपगत सिद्धांत नीति के कारण अनेक देशी रियासतों का विलय, भू-राजस्व की कठोर वसूली प्रणाली, हस्तशिल्प उद्योगों का पतन तथा पारंपरिक जमींदारी व्यवस्था में हस्तक्षेप ने किसानों, दस्तकारों और सामंती वर्गों में गहरा असंतोष उत्पन्न किया। मंगल पांडे के विद्रोह से प्रारंभ होकर यह आंदोलन शीघ्र ही मेरठ, दिल्ली, कानपुर, लखनऊ और झांसी जैसे केंद्रों में फैल गया, जहां नाना साहेब, तात्या टोपे, बेगम हज़रत महल और रानी लक्ष्मीबाई जैसे नेताओं ने इसका नेतृत्व किया। यद्यपि यह विद्रोह संगठनात्मक एकता और आधुनिक शस्त्रों के अभाव में असफल रहा, तथापि इसने भावी राष्ट्रीय आंदोलन की नींव रखी और ब्रिटिश सरकार को भारतीय समाज की सामूहिक शक्ति का आभास कराया। इसके पश्चात् 1858 के अधिनियम द्वारा भारत सीधे ब्रिटिश ताज के अधीन आ गया, जिससे उपनिवेशवादी शोषण की संस्थागत संरचना और सुदृढ़ हो गई।

- जन-भागीदारी का स्वरूप: इस विद्रोह में अवध, रोहिलखंड, और मध्य भारत के किसानों, कारीगरों, दस्तकारों और स्थानीय जमींदारों ने ब्रिटिश राजस्व नीतियों और आर्थिक शोषण के विरुद्ध खुलकर भाग लिया। अवध के तालुकदारों ने न केवल विद्रोह का नेतृत्व किया बल्कि स्थानीय किसानों को भी संगठित किया, क्योंकि 1856 में अवध के विलय के बाद भू-राजस्व व्यवस्था में हुए परिवर्तनों से किसान वर्ग पहले से ही असंतुष्ट था।
- सामाजिक-आर्थिक विमर्श: किसानों और ग्रामीण जनता की भागीदारी ने यह स्पष्ट कर दिया कि ब्रिटिश नीतियां भारतीय समाज की आर्थिक रीढ़ को तोड़ रही हैं। हालांकि यह विद्रोह तात्कालिक रूप से असफल रहा, लेकिन इसने भविष्य के राष्ट्रीय आंदोलनों के लिए एक वैचारिक और वैमनस्यता का बीज बो दिया।

III. राष्ट्रीय आंदोलन का उदय और संगठित जन-भागीदारी

1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना ने भारतीय राजनीतिक चेतना को एक संगठित मंच प्रदान किया। प्रारंभिक काल में कांग्रेस का नेतृत्व नरमपंथी नेताओं के हाथों में था, जो संवैधानिक साधनों और प्रार्थना-पत्रों के माध्यम से सुधार चाहते थे। इस चरण में जन-भागीदारी सीमित रही, किंतु इसने भावी व्यापक आंदोलन के लिए वैचारिक और संगठनात्मक आधार तैयार किया। बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय और बिपिनचंद्र पाल जैसे गरमपंथी नेताओं ने 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है' के उद्घोष के माध्यम

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 9, Issue 1, September 2019 Impact Factor: 4.819

से जन-चेतना को नई ऊर्जा दी। इसी काल में क्रांतिकारी आंदोलन भी सक्रिय हुए, जिनमें भगत सिंह, चंद्रशेखर आज़ाद और खुदीराम बोस जैसे युवाओं ने सशस्त्र प्रतिरोध के माध्यम से औपनिवेशिक सत्ता को चुनौती दी। इसी काल में सामाजिक-सुधार आंदोलनों — जैसे आर्य समाज, ब्रह्म समाज और सत्यशोधक समाज — ने भी परोक्ष रूप से राष्ट्रीय चेतना के प्रसार में योगदान दिया, क्योंकि इन आंदोलनों ने सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध जन-जागरूकता उत्पन्न की, जो आगे चलकर राजनीतिक जागरूकता में परिवर्तित हुई।

IV. स्वदेशी आंदोलन (1905-1911): जन-आंदोलन की पहली बड़ी झलक

1905 में लॉर्ड कर्ज़न द्वारा बंगाल विभाजन की घोषणा ने व्यापक जन-प्रतिरोध को जन्म दिया। यह आंदोलन इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि इसमें पहली बार शिक्षित मध्यवर्ग की सीमा से बाहर निकलकर व्यापक जनसमूह ने भाग लिया।

- आर्थिक आयाम — स्वदेशी उद्योगों को बढ़ावा: विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के साथ-साथ स्वदेशी कपड़ा मिलों, साबुन व माचिस उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहन मिला, जिससे यह आंदोलन आर्थिक राष्ट्रवाद से भी जुड़ गया।
- महिलाओं की भागीदारी: बंगाल की महिलाओं ने रक्षाबंधन उत्सव को सांप्रदायिक एकता के प्रतीक के रूप में मनाया और विदेशी वस्तुओं की होली जलाने में सक्रिय भूमिका निभाई।
- विद्यार्थियों की भूमिका: कोलकाता व ढाका के छात्रों ने राष्ट्रीय शिक्षा परिषद जैसी संस्थाओं के माध्यम से स्वदेशी शिक्षा का प्रचार किया और सरकारी स्कूलों का बहिष्कार किया।

गांधीवादी युग: स्थानीय सत्याग्रहों से राष्ट्रीय आंदोलन तक

महात्मा गांधी के भारतीय राजनीति में प्रवेश के साथ स्वाधीनता संग्राम का स्वरूप मौलिक रूप से परिवर्तित हो गया। सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों पर आधारित सत्याग्रह की पद्धति ने आंदोलन को अभिजात्य वर्ग की सीमाओं से बाहर निकालकर व्यापक जनसमुदाय तक पहुंचाया। चंपारण और खेड़ा सत्याग्रह ने किसानों की समस्याओं को राष्ट्रीय आंदोलन के केंद्र में स्थापित किया, जबकि 1920-22 का असहयोग आंदोलन पहला ऐसा आंदोलन था जिसमें विद्यार्थी, वकील, महिलाएं और श्रमिक वर्ग बड़ी संख्या में सम्मिलित हुए। 1930 का सविनय अवज्ञा आंदोलन और ऐतिहासिक दांडी यात्रा नमक कर के माध्यम से सामान्य जनता के दैनिक जीवन से जुड़ी समस्याओं को औपनिवेशिक विरोध का प्रतीक बनाने में सफल रहा। 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन तो जन-आक्रोश का सर्वोच्च बिंदु था, जिसमें बिना किसी केंद्रीय नेतृत्व के भी आम जनता ने स्वतःस्फूर्त रूप से प्रशासनिक व्यवस्था को चुनौती दी। इन आंदोलनों की सफलता इस बात में निहित थी कि इन्होंने आर्थिक शोषण, सामाजिक अन्याय और राजनीतिक दासता के प्रश्नों को एक साझा राष्ट्रीय विमर्श में पिरो दिया।

चंपारण सत्याग्रह (1917)

बिहार के चंपारण जिले में नील की खेती करने वाले किसान 'तीनकठिया प्रणाली' के अंतर्गत यूरोपीय बागान मालिकों के शोषण के शिकार थे। महात्मा गांधी ने स्थानीय किसान राजकुमार शुक्ल के आमंत्रण पर चंपारण का दौरा किया और किसानों की गवाही एकत्र कर एक जांच समिति गठित करवाई। यह भारत में गांधीजी का पहला सत्याग्रह था, जिसमें जन-भागीदारी का आधार स्वयं पीड़ित किसान वर्ग था।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 9, Issue 1, September 2019 Impact Factor: 4.819

खेड़ा सत्याग्रह (1918)

गुजरात के खेड़ा जिले में अकाल की स्थिति के बावजूद सरकार द्वारा लगान वसूली जारी रखे जाने के विरुद्ध किसानों ने सरदार वल्लभभाई पटेल और गांधीजी के नेतृत्व में लगान-बंदी (no-tax campaign) आंदोलन चलाया।

अहमदाबाद मिल मजदूर हड़ताल (1918)

अहमदाबाद के कपड़ा मिल मजदूरों ने वेतन-वृद्धि की मांग को लेकर हड़ताल की, जिसमें गांधीजी ने मध्यस्थता करते हुए अनशन का प्रयोग किया। यह घटना औद्योगिक श्रमिक वर्ग की संगठित भागीदारी का प्रारंभिक उदाहरण है।

असहयोग आंदोलन (1920-1922): व्यापक जन-भागीदारी का प्रथम राष्ट्रव्यापी प्रयोग

जलियांवाला बाग हत्याकांड (1919) और खिलाफत आंदोलन के साथ हिंदू-मुस्लिम एकता की पृष्ठभूमि में शुरू हुए असहयोग आंदोलन ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को वास्तविक अर्थों में जन-आंदोलन बना दिया।

- सरकारी उपाधियों व सम्मानों का त्याग — रवींद्रनाथ टैगोर द्वारा 'नाइटहुड' की उपाधि लौटाना इसका प्रतीकात्मक उदाहरण है।
- वकीलों द्वारा अदालतों का बहिष्कार — मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजन दास जैसे प्रतिष्ठित वकीलों ने अपनी वकालत छोड़ दी।
- विद्यार्थियों द्वारा सरकारी स्कूल-कॉलेजों का बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं (जैसे काशी विद्यापीठ, जामिया मिलिया इस्लामिया) की स्थापना।
- विदेशी वस्त्रों की होली और चरखा-खादी को स्वावलंबन के प्रतीक के रूप में अपनाना।
- किसानों द्वारा संयुक्त प्रांत (अवध) में लगान न देने का आंदोलन तथा 'एका आंदोलन'।
- फरवरी 1922 में चौरी-चौरा कांड के पश्चात गांधीजी ने आंदोलन स्थगित कर दिया, किंतु तब तक यह स्पष्ट हो चुका था कि राष्ट्रीय आंदोलन अब जनसाधारण की सक्रिय सहभागिता के बिना अधूरा है।

V. सामाजिक-आर्थिक आयाम: किसान, मजदूर व आदिवासी आंदोलन

स्वाधीनता संग्राम केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं था, अपितु इसमें सामाजिक-आर्थिक शोषण के विरुद्ध भी समानांतर संघर्ष चलते रहे, जो अक्सर राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा से जुड़ गए।

किसान आंदोलन

- बारदोली सत्याग्रह (1928) — गुजरात के बारदोली तालुका में लगान वृद्धि के विरुद्ध सरदार पटेल के नेतृत्व में किसानों का सफल सामूहिक प्रतिरोध, जिसके बाद पटेल को 'सरदार' की उपाधि मिली।
- अखिल भारतीय किसान सभा (1936) का गठन — स्वामी सहजानंद सरस्वती के नेतृत्व में किसानों के अधिकारों हेतु संगठित आंदोलन।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 9, Issue 1, September 2019 Impact Factor: 4.819

मजदूर आंदोलन

- अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (AITUC) की स्थापना (1920) — औद्योगिक मजदूरों के हितों की रक्षा हेतु प्रथम अखिल भारतीय संगठन।
- रेलवे व वस्त्र-मिल मजदूरों की विभिन्न हड़तालें, जो राष्ट्रीय आंदोलन के आर्थिक पक्ष को उजागर करती हैं।

आदिवासी विद्रोह

- बिरसा मुंडा का उलगुलान आंदोलन (1899-1900) — झारखंड क्षेत्र में वन-भूमि अधिकारों व बेगार प्रथा के विरुद्ध आदिवासी विद्रोह, जिसने बाद में छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम जैसे सुधारों को प्रभावित किया।
- संथाल विद्रोह (1855-56) एवं मुंडा-उरांव विद्रोहों की परंपरा ने यह दर्शाया कि उपनिवेशवाद-विरोधी प्रतिरोध केवल शहरी-शिक्षित वर्ग तक सीमित नहीं था।

महिलाओं की भागीदारी: अदृश्य से केंद्रीय भूमिका तक

स्वाधीनता संग्राम में महिलाओं की भूमिका क्रमिक रूप से विस्तृत होती गई। प्रारंभ में यह घरेलू स्तर पर स्वदेशी को अपनाने तक सीमित थी, परंतु सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय महिलाएं सार्वजनिक आंदोलनों, धरनों व जुलूसों में प्रत्यक्ष भागीदार बनीं।

- उदाहरण — सरोजिनी नायडू: धरासना नमक सत्याग्रह (1930) का नेतृत्व करते हुए उन्होंने सत्याग्रहियों को पुलिस के लाठीचार्ज के सामने अहिंसक प्रतिरोध हेतु प्रेरित किया।
- उदाहरण — कस्तूरबा गांधी व कमला नेहरू: इन्होंने असहयोग व सविनय अवज्ञा आंदोलनों में सामान्य महिलाओं को संगठित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- उदाहरण — भारत छोड़ो आंदोलन में महिलाएं: अरुणा आसफ अली द्वारा बंबई के गोवालिया टैंक मैदान में तिरंगा फहराना इस आंदोलन में महिलाओं के साहस का प्रतीक बना।

पारंपरिक रूप से चार दीवारों में सीमित मानी जाने वाली भारतीय महिलाओं ने 1930 के दशक के बाद से स्वतंत्रता संग्राम में अग्रिम पंक्ति की भूमिका निभाई। बंगाल की मातंगिनी हाजरा और कनकलता बरुआ जैसी साधारण महिलाओं ने तिरंगा झंडा थामे हुए ब्रिटिश गोलियों का सामना करते हुए सर्वोच्च बलिदान दिया। महिलाओं की इस भागीदारी ने पितृसत्तात्मक सामाजिक ढांचे को चुनौती दी और लैंगिक समानता के आधुनिक विमर्श की नींव रखी।

सविनय अवज्ञा आंदोलन और दांडी यात्रा (1930)

12 मार्च 1930 को गांधीजी द्वारा साबरमती आश्रम से दांडी तक की 240 मील की यात्रा और नमक कानून तोड़ना, जन-भागीदारी की दृष्टि से एक अत्यंत सांकेतिक किंतु प्रभावी उदाहरण है। नमक जैसी दैनिक आवश्यकता की वस्तु को प्रतीक बनाकर गांधीजी ने आंदोलन को हर वर्ग — किसान, मजदूर, महिला, व्यापारी — तक पहुंचाया। इस आंदोलन के समानांतर देशभर में विभिन्न क्षेत्रीय प्रतिरोध हुए — जैसे संयुक्त प्रांत में लगान-बंदी आंदोलन, मिदनापुर व बंगाल में चौकीदारी-कर विरोधी आंदोलन, तथा उत्तर-पश्चिम

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 9, Issue 1, September 2019 Impact Factor: 4.819

सीमा प्रांत में खान अब्दुल गफ्फार खान के नेतृत्व में खुदाई खिदमतगार आंदोलन, जिसने पश्तून समुदाय को अहिंसक प्रतिरोध से जोड़ा।

VI. भारत छोड़ो आंदोलन (1942): अंतिम व सर्वाधिक व्यापक जन-विद्रोह

8 अगस्त 1942 को कांग्रेस द्वारा पारित 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव और गांधीजी के 'करो या मरो' के आह्वान ने एक स्वतःस्फूर्त, व्यापक जन-विद्रोह को जन्म दिया, जिसमें शीर्ष नेतृत्व की तत्काल गिरफ्तारी के बावजूद जनता ने स्वयं आंदोलन का नेतृत्व संभाला।

- समानांतर सरकारें: बलिया (उत्तर प्रदेश) में चित्तू पांडे के नेतृत्व में तथा सतारा (महाराष्ट्र) में 'प्रति सरकार' के रूप में स्थानीय जनता द्वारा प्रशासनिक तंत्र स्थापित किया गया।
- भूमिगत नेटवर्क: जयप्रकाश नारायण, उषा मेहता जैसे नेताओं ने भूमिगत रेडियो व पर्चों के माध्यम से आंदोलन को जीवंत रखा।

इस आंदोलन ने स्पष्ट किया कि स्वाधीनता की मांग अब केवल संगठित नेतृत्व पर निर्भर नहीं थी, बल्कि यह जनमानस में गहराई से स्थापित हो चुकी थी।

VII. सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक विमर्श और हाशिए के वर्गों की भूमिका

स्वाधीनता संग्राम के दौरान विकसित हुआ राष्ट्रीय विमर्श केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं रहा, अपितु इसमें सामाजिक सुधार और आर्थिक न्याय के प्रश्न भी अंतर्निहित थे। डॉ. भीमराव आंबेडकर ने दलित वर्गों के सामाजिक उत्थान और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के प्रश्न को राष्ट्रीय बहस के केंद्र में लाकर यह स्पष्ट किया कि औपनिवेशिक सत्ता से मुक्ति के साथ-साथ आंतरिक सामाजिक असमानताओं का उन्मूलन भी आवश्यक है। इसी प्रकार किसान सभाओं और मजदूर संगठनों ने भूमि सुधार और श्रमिक अधिकारों के प्रश्नों को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ा। महिलाओं की भागीदारी भी इस काल की एक उल्लेखनीय विशेषता रही — सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा गांधी, अरुणा आसफ अली और कैप्टन लक्ष्मी सहगल जैसी महिलाओं ने न केवल आंदोलनों में सक्रिय भूमिका निभाई, बल्कि स्त्री-शिक्षा और सामाजिक समानता के प्रश्नों को भी उजागर किया। इसके अतिरिक्त, आदिवासी समुदायों के विद्रोह — जैसे बिरसा मुंडा का उलगुलान आंदोलन — यह दर्शाते हैं कि औपनिवेशिक शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध केवल शहरी अभिजात्य वर्ग तक सीमित नहीं था, बल्कि यह भारतीय समाज के सभी स्तरों में व्याप्त था।

- **आर्थिक विमर्श: धन की निकासी का सिद्धांत**

ब्रिटिश शासन की आर्थिक नीतियां मूलतः भारत को कच्चे माल के स्रोत और तैयार माल के बाजार में परिवर्तित करने पर केंद्रित थीं। न्यायमूर्ती रानाडे, आर.सी. दत्त न दादाभाई नौरोजी ने अपने 'धन-निष्कासन सिद्धांत' (Drain of Wealth) के माध्यम से यह सिद्ध किया कि ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियां किस प्रकार भारत की संपत्ति को ब्रिटेन ले जा रही हैं और भारतीय अर्थव्यवस्था को बदहाल कर रही हैं। इस आर्थिक राष्ट्रवाद ने आम जनता को यह समझाया कि उनकी गरीबी का कारण ब्रिटिश शासन है।

रेलवे और आधुनिक उद्योगों का विकास भी मुख्यतः औपनिवेशिक हितों की पूर्ति हेतु हुआ, न कि भारतीय जनसामान्य के कल्याण के लिए। भारी भू-राजस्व, बार-बार पड़ने वाले अकाल, हस्तशिल्प उद्योगों के विनाश और कृषि के व्यावसायीकरण ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को गहरा आघात पहुंचाया। सामाजिक स्तर पर, आधुनिक शिक्षा के प्रसार ने एक नवशिक्षित मध्यम वर्ग को जन्म दिया,

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 9, Issue 1, September 2019 Impact Factor: 4.819

जिसने पश्चिमी उदारवादी विचारों से प्रेरित होकर स्वतंत्रता, समानता और स्वशासन की अवधारणाओं को आत्मसात किया। यही वर्ग आगे चलकर राष्ट्रीय आंदोलन का बौद्धिक नेतृत्व करने वाला सिद्ध हुआ।

- **सामाजिक सुधार और समतावादी विमर्श**

स्वाधीनता संग्राम केवल अंग्रेजों के खिलाफ नहीं था, बल्कि यह भारतीय समाज की आंतरिक कुरीतियों (जैसे छुआछूत, जातिप्रथा, बाल विवाह और लिंग भेद) के खिलाफ भी था। ज्योतिराव फुले, सावित्रीबाई फुले, और डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने दलितों, शोषितों और महिलाओं के अधिकारों के लिए जो संघर्ष छेड़े, उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के सामाजिक न्याय के दायरे को विस्तृत किया। महात्मा गांधी के 'हरिजन सेवक संघ' और अस्पृश्यता निवारण के प्रयासों ने समाज को जोड़ने का काम किया। सामाजिक स्तर पर, आधुनिक शिक्षा के प्रसार ने एक नवशिक्षित मध्यम वर्ग को जन्म दिया, जिसने पश्चिमी उदारवादी विचारों से प्रेरित होकर स्वतंत्रता, समानता और स्वशासन की अवधारणाओं को आत्मसात किया। यही वर्ग आगे चलकर राष्ट्रीय आंदोलन का बौद्धिक नेतृत्व करने वाला सिद्ध हुआ।

- **राजनीतिक विमर्श: संवैधानिक विकास और सत्ता-हस्तांतरण**

जन-आंदोलनों के समानांतर एक संवैधानिक विमर्श भी चलता रहा, जिसमें भारतीय परिषद अधिनियम (1909), भारत सरकार अधिनियम (1919 व 1935), गोलमेज सम्मेलन (1930-32), तथा कैबिनेट मिशन योजना (1946) जैसे प्रयासों ने राजनीतिक सत्ता के क्रमिक हस्तांतरण की रूपरेखा तैयार की। यद्यपि यह संवैधानिक प्रक्रिया अभिजात्य वर्ग तक अधिक केंद्रित रही, तथापि जन-आंदोलनों के दबाव ने ही इन सुधारों को अनिवार्य बनाया। इस प्रकार जन-भागीदारी और संवैधानिक विमर्श परस्पर पूरक प्रक्रियाएं सिद्ध हुईं। अंततः 3 जून 1947 की माउंटबेटन योजना और भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के माध्यम से 15 अगस्त 1947 को भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उदित हुआ, साथ ही विभाजन की त्रासदी भी इस प्रक्रिया का दुखद अंग बनी।

संविधान-निर्माण और गणतंत्र की स्थापना

किंतु यह यात्रा यहीं समाप्त नहीं हुई। संविधान सभा में स्वाधीनता संग्राम के दौरान विकसित हुए सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक विमर्श को संस्थागत स्वरूप प्रदान किया गया। डॉ. आंबेडकर की अध्यक्षता में निर्मित भारतीय संविधान ने समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और सामाजिक न्याय के उन्हीं मूल्यों को संवैधानिक गारंटी प्रदान की, जिनके लिए स्वाधीनता संग्राम के दौरान संघर्ष किया गया था। 26 जनवरी 1950 को संविधान के प्रभावी होने के साथ भारत औपचारिक रूप से एक संप्रभु, लोकतांत्रिक गणराज्य बना, जिसमें सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के माध्यम से प्रत्येक नागरिक को राजनीतिक सहभागिता का अधिकार प्राप्त हुआ — यह उस दीर्घकालिक जन-आंदोलन की सार्थक परिणति थी जिसका शुभारंभ 1857 में हुआ था।

VIII. निष्कर्ष

1857 से 1947 तक की भारतीय स्वाधीनता की यात्रा यह प्रमाणित करती है कि कोई भी राष्ट्रीय आंदोलन तब तक स्थायी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता जब तक वह व्यापक जन-भागीदारी पर आधारित न हो। प्रारंभिक सैनिक और सामंती विद्रोह से लेकर गांधीवादी जन-आंदोलनों तक की यह यात्रा दर्शाती है कि किस प्रकार आर्थिक शोषण, सामाजिक असमानता और राजनीतिक दासता के प्रश्न आपस में गुंथकर एक समग्र राष्ट्रीय विमर्श का निर्माण करते हैं। किसानों, मजदूरों, महिलाओं, दलितों और आदिवासियों की सक्रिय भागीदारी ने इस आंदोलन को वास्तविक अर्थों में 'जन-आंदोलन' का स्वरूप प्रदान किया। चंपारण के नील किसानों से लेकर बारदोली के

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 9, Issue 1, September 2019 Impact Factor: 4.819

काश्तकारों तक, अहमदाबाद के मिल मजदूरों से लेकर बलिया की जनता तक, और सरोजिनी नायडू से लेकर अरुणा आसफ अली तक — प्रत्येक सामाजिक-आर्थिक वर्ग ने अपने-अपने ढंग से इस संग्राम में योगदान दिया। यही व्यापक जन-भागीदारी भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को विश्व के अन्य उपनिवेशवाद-विरोधी आंदोलनों से विशिष्ट बनाती है और यह दर्शाती है कि स्वतंत्रता केवल राजनीतिक सत्ता-परिवर्तन नहीं, बल्कि एक गहन सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक रूपांतरण की प्रक्रिया थी। स्वतंत्र भारत के संविधान में समाहित सामाजिक न्याय, समानता और लोकतांत्रिक मूल्यों की जड़ें इसी दीर्घकालिक संघर्ष और विमर्श में खोजी जा सकती हैं। अतः यह कहना समीचीन होगा कि भारत का गणतंत्र स्वरूप केवल राजनीतिक स्वतंत्रता का परिणाम नहीं, बल्कि सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक चेतना के दीर्घकालिक सामूहिक संघर्ष की सार्थक परिणति है।

संदर्भ

1. चन्द्र, बिपन (1989). भारत का स्वतंत्रता संग्राम। नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया।
2. चन्द्र, बिपन; मुखर्जी, मृदुला; मुखर्जी, आदित्य; महाजन, सुचेता; पणिक्कर, के.एन. (2000). आज़ादी के बाद भारत। नई दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
3. सेन, सुरेंद्र नाथ (1957). अठारह सौ सत्तावन (हिंदी अनुवाद)। नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
4. चोपड़ा, प्रभा (डॉ.) (1990). कूका आंदोलन: 1857 से 1947 तक बलिदान और संघर्ष। नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, भारत सरकार।
5. पांडेय, गंगा प्रसाद (2007). भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास। इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
6. मिश्र, धनञ्जय (2010). भारत का राष्ट्रीय आंदोलन (1857-1947)। दिल्ली: ग्रंथ अकादमी।
7. सिंह, नीरज कर्ण; अरफात, यासिर (2022). 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की पत्रकारिता। दिल्ली: प्रभात प्रकाशन।
8. सरकार, सुमित; (1983). आधुनिक भारत: 1885- 1947. नई दिल्ली: मैकमिलन इंडिया
9. देसाई, ए.आर.(1948); भारतीय राष्ट्रवाद का सामाजिक आधार, मुंबई: पापुलर प्रकाशन
10. सावरकर, विनायक दामोदर (1909); 1857 का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम. लंदन(गुप्त रूप से प्रकाशित)
11. NCERT (2007). राष्ट्रीय आंदोलन का संघटन: 1870 के दशक से 1947 तक (कक्षा 12 पाठ्यपुस्तक)।नई दिल्ली: राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद।भारत सरकार,
12. संस्कृति मंत्रालय — स्वाधीनता संग्राम संबंधी अभिलेख
13. भारतीय राष्ट्रीय पोर्टल (राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र, भारत सरकार)। स्वाधीनता संग्राम संबंधी प्रकाशन। नई दिल्ली।
14. भारत सरकार, संस्कृति मंत्रालय (विभिन्न वर्ष)। अमृत महोत्सव - स्वतंत्रता संग्राम स्मारिका शृंखला। नई दिल्ली।
15. जनचौक (ऑनलाइन पत्रिका) (2022). "1857 की क्रांति, उर्दू पत्रकारिता और भारतीय पत्रकारिता का पहला शहीद।"